श्रीमद् भागवत रसिक कुटुंब

श्रीमद् भागवत का यह सार
भगवद् भक्ति ही आधार

देव स्तुति(भागवत मुखस्थ परीक्षा हेतु)

॥ ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

एकादशः स्कंधः

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

देवा ऊचुः

नताः(स्) स्म ते नाथ पदारविन्दं(म्),

बुद्धीन्द्रियप्राणमनोवचोभिः।

यच्चिन्त्यतेऽन्तर्हृदि भावयुक्तैर्-

मुमुक्षुभिः(ख्) कर्ममयोरुपाशात्॥ 1॥

श्री-देवाःऊचुः-देवताओं ने कहा; **नताःस्म**- हम नतमस्तक हैं;**ते**—तुम्हारे; **नाथ**– हे स्वामी;**पद- अरविन्दम्**—चरणकमलों को; **बुद्धि**- अपनी बुद्धि से; **इन्द्रिय**– इन्द्रियाँ; **प्राण-** प्राण- वायु; **मनः**– मन; **वचोभिः**– तथा शब्दों से; **यत्**— जो; **चिन्त्यते**- चिन्तन किये जाते हैं; **अन्तः हृदि**- हृदय के भीतर; **भाव- युक्तैः**- योगाभ्यास में स्थिर चित्त वालों को; **मुमुक्षुभिः** मुक्ति के लिए प्रयत्नशीलों के द्वारा; **कर्म-मय**- सकाम कर्म के फलों के; **उरु-पाशात्**– महान् बन्धन से ।

देवताओं ने प्रार्थना की- हे स्वामी! कर्मों के विकट फंदों से छूटने की इच्छा वाले मोक्ष पाने के अभिलाषी भक्ति-भाव से अपने हृदय से जिसका चिन्तन करते रहते हैं, आपके उसी चरणकमल को हम लोगों ने अपनी बुद्धि, इन्द्रिय,प्राण,मन और वाणी से साक्षात् नमस्कार किया है ।

त्वं(म्) मायया त्रिगुणयाऽऽत्मनि दुर्विभाव्यं(वँ),

व्यक्तं(म्) सृजस्यवसि लुम्पसि तद्गुणस्थः।

नैतैर्भवानजित कर्मभिरज्यते वै,

यत् स्वे सुखेऽव्यवहितेऽभिरतोऽनवद्यः॥ 2॥

त्वम्– तुम; **मायया**– भौतिक शक्ति द्वारा; **त्रि-गुणया**- तीन गुणों से निर्मित; **आत्मनि**- अपने भीतर; **दुर्विभाव्यम्**- अचिन्त्य; **व्यक्तम्**—प्रकट जगत; **सृजसि**— उत्पन्न करते हो; **अवसि**- रक्षा करते हो; **लुम्पसि**- तथा संहार करते हो; **तत्**— उस प्रकृति का; **गुण**- गुणों (सतो, रजो तथा तमो) के भीतर; **स्थः**- स्थित; **न**– नहीं; **एतैः**- इनके द्वारा; **भवान्**- आप; **अजित**- हे अजेय स्वामी; **कर्मभिः**- कर्मों से; **अज्यते**- फँस जाते हैं; **वै**-

तनिक; यत्— क्योंकि; स्वे– अपने; सुखे– सुख में; अव्यवहिते- बिना किसी रोक के; अभिरतः- सदैव लीन रहते हो; अनवद्यः- दोषरहित प्रभु ।

हे अजित! आप माया से बनी हुई रज आदि गुणों में स्थित होकर इस अचिन्त्य नाम-रूपात्मक प्रपंच की त्रिगुणमयी माया के द्वारा अपने-आप में ही रचना करते हैं,पालन करते और संहार करते हैं। यह सब करते हुए भी इन कर्मों से आप लिप्त नहीं होते हैं; क्योंकि आप राग-द्वेषादि दोषों से सर्वथा मुक्त हैं और अपने आवरण रहित अखण्ड स्वरूप परमानन्द में मग्न रहते हैं

शुद्धिर्नृणां(न्) न तु तथेड्य दुराशयानां(वँ),

विद्याश्रुताध्ययनदानतपः(ख्)क्रियाभिः।

सत्त्वात्मनामृषभ ते यशसि प्रवृद्ध-

सच्छ्रद्धया श्रवणसम्भृतया यथा स्यात्॥ 3॥

शुद्धिः– शुद्धि; नृणाम्— मनुष्यों की; न– नहीं; तु— लेकिन;तथा— इस तरह; ईड्य– हे पूज्य; दुराशयानाम् — उनके, जिनकी चेतना कलुषित है; विद्या- सामान्य पूजा द्वारा; श्रुत- वेदों का श्रवण तथा उनके आदेशों का पालन; अध्ययन- विभिन्न शास्त्रों का अध्ययन; दान–दान; तपः- तपस्या; क्रियाभिः- तथा अनुष्ठानों द्वारा ; सत्त्व- आत्मनाम्— सतोगुणियों के; ऋषभ- हे सर्वश्रेष्ठ; ते– तुम्हारा; यशसि- यश में; प्रवृद्ध— पूर्णतया परिपक्व; सत्- दिव्य; श्रद्धया श्रद्धा द्वारा ; श्रवण-सम्भृतया- सुनने की विधि से पुष्ट हुआ; यथा- जिस तरह; स्यात्— है ।

हे स्तुति करने योग्य परमात्मन्! जिन मनुष्यों की चित्तवृत्ति राग-द्वेषादि से कलुषित हैं,वे उपासना, वेदाध्ययन,दान, तपस्या और यज्ञ आदि कर्म भले ही करें; परन्तु उनकी वैसी शुद्धि नहीं हो सकती जैसी श्रवण के द्वारा पूर्णतः पुष्ट शुद्ध अन्तःकरण युक्त सज्जन पुरुषों की आपकी लीला कथा,कीर्ति के विषय में दिनोंदिन बढ़कर परिपूर्ण होने वाली श्रद्धा से होती है।

स्यान्नस्तवाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः,

क्षेमाय यो मुनिभिरार्द्रहृदोह्यमानः।

यः(स्) सात्वतैः(स्) समविभूतय आत्मवद्भिर्-

व्यूहेऽर्चितः(स्) सवनशः(स्) स्वरतिक्रमाय॥ 4॥

स्यात्—वे हों; नः– हमारे लिए; तव– तुम्हारे; अङ्घ्रिः- चरणकमल; अशुभ- आशय- हमारी अशुभ मनोवृत्ति के; धूम-केतुः- प्रलयंकारी अग्नि; क्षेमाय- असली लाभ पाने के लिए; यः– जो; मुनिभिः - मुनियों द्वारा; आर्द्र -हृदा- पिघले हृदयों से; उह्यमानः–ले जाये जा रहे हैं; यः– जो; सात्वतैः- भगवान् के भक्तों द्वारा; सम- विभूतये- उनके ही जैसा ऐश्वर्य पाने के लिए; आत्म-वद्भिः– आत्मसंयमियों के द्वारा; व्यूहे- वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध इन चार स्वांशों द्वारा; अर्चितः- पूजित; सवनशः- प्रत्येक दिन की तीन संधियों पर; स्वः-अतिक्रमाय - इस जगत के स्वर्ग से परे जाने के लिए।

जीवन में परम लाभ की कामना करने वाले ऋषि- मुनि अपने प्रेम से पिघले हुए हृदय के भीतर सदैव आपके चरण कमलों का स्मरण करते हैं। इसी प्रकार आपके आत्म संयमी भक्तगण आपके ही समान ऐश्वर्य पाने के लिए स्वर्ग से परे जाने की इच्छा से आपके चरण कमलों की पूजा प्रातः दोपहर तथा संध्या

समय करते हैं और आपके चक्रव्यूह (वासुदेव, संकर्षण, प्रद्‌युम्न, अनिरुद्ध) रूप का ध्यान करते हैं। आपके चरण कमल उस प्रज्ज्वलित अग्नि के समान है, जो भौतिक इंद्रिय तृप्ति को भस्म कर देती है।

यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ,

त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा।

अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां(ञ्),

जिज्ञासुभिः(फ्) परमभागवतैः(फ्) परीष्टः॥ 5॥

यः– जो; चिन्त्यते– ध्यान किया जाता है; प्रयत-पाणिभिः- हाथ जोड़े हुए लोगों के द्वारा; अध्वर-अग्नौ– यज्ञ की अग्नि में; त्रय्या – तीनों वेदों (ऋग्, यजुः तथा साम) के; निरुक्त- निरुक्त में दी हुई जानकारी; विधिना- विधि से; ईश- हे स्वामी; हविः- हवन करने के निमित्त घी; गृहीत्वा– लेकर; अध्यात्म-योगे- आत्मा की अनुभूति हेतु योग-पद्धति में; उत- भी; योगिभिः— योगियों द्वारा; आत्म-मायाम्- आपकी मोहने वाली माया के विषय में; जिज्ञासुभिः- जिज्ञासुओं द्वारा; परम-भागवतैः– अत्यन्त उन्नत हो चुके भक्तों द्वारा; परीष्टः- पूजित ।

जो लोग ऋग्वेद, यजुर्वेद तथा सामवेद में दी गई विधि के अनुसार यज्ञ की अग्नि में आहुति देने वाले होते हैं , वे आपके चरण कमलों का ध्यान करते हैं। इसी प्रकार योगीजन आपकी दिव्य योग शक्ति का ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से आपके चरण कमलों का ध्यान करते हैं और जो सर्वाधिक उन्नत जिज्ञासु भक्त हैं, वे आपकी माया शक्ति को पार करने की इच्छा से आपके चरण कमलों को ही अपना आराध्य देव मानते हैं।

पर्युष्टया तव विभो वनमालयेयं(म्),

सं(म्)स्पर्धिनी भगवती प्रतिपत्निवच्छ्रीः।

यः(स्) सुप्रणीतममुयार्हणमाददन्नो,

भूयात् सदाङ्घ्रिरशुभाशयधूमकेतुः॥ 6॥

पर्युष्टया– मुरझाई हुई, बासी; तव– तुम्हारा; विभो– सर्वशक्तिमान भगवान्; वनमालया– फूल की माला से ; इयम्—वह; संस्पर्धिनी— स्पर्धा करती हुई; भगवती- भगवान् की स्त्री; प्रति-पत्नी- वत् - ईर्ष्यालु सौत की तरह; श्रीः–लक्ष्मीदेवी; यः जो भगवान् (आप); सु-प्रणीतम्- जिससे भलीभाँति सम्पन्न हो सके; अमुया- इससे; अर्हणम्– भेंट; आददन्— स्वीकार करते हुए; नः– हमारा; भूयात्— हो; सदा– सदैव; अङ्घ्रिः- चरणकमल; अशुभ-आशय- हमारी शुद्ध इच्छाओं की; धूम-केतुः- विनाश की अग्नि ।.

प्रभो! यह भगवती लक्ष्मी आपके वक्षःस्थल पर मुरझायी हुई बासी वनमाला से भी सौत की तरह स्पर्द्धा रखती हैं। फिर भी आप उनकी परवा न कर भक्तों के द्वारा इस बासी माला से की हुई पूजा भी प्रेम से स्वीकार करते हैं। ऐसे भक्तवत्सल प्रभु के चरणकमल सर्वदा हमारी विषय वासनाओं को जलाने-वाले अग्निस्वरूप हों।

केतुस्त्रिविक्रमयुतस्त्रिपतत्पताको,

यस्ते भयाभयकरोऽसुरदेवचम्वोः।

स्वर्गाय साधुषु खलेष्वितराय भूमन्,

पादः(फ्) पुनातु भगवन् भजतामघं(न्) नः॥ 7॥

केतुः- झंडे का डंडा; त्रि-विक्रम- बलि महाराज को जीतने के लिए भरे गये तीन पग; यतः- अलंकृत; त्रि-पतत्— तीनों लोकों में गिरते हुए; पताकः- झंडा, जिस पर; यः– जो; ते– तुम्हारे (चरणकमल); भय-अभय- भय तथा निर्भीकता; करः–करने वाले; असुर-देव - असुरों तथा देवताओं की ; चम्वोः-सेनाओं के लिए; स्वर्गाय– स्वर्ग-प्राप्ति के लिए; साधुषु—साधु-देवताओं तथा भक्तों के बीच; खलेषु– दुष्ट; इतराय– इनसे विपरीतों के लिए; भूमन्— हे सर्वाधिक शक्तिशाली प्रभु; पादः– चरणकमल; पुनातु- पवित्र करें; भगवन्– हे भगवान्; भजताम्– आपकी पूजा में लगे हुए; अघम्- पापों को; नः- हमारे |

हेअनन्त! वामनावतार में दैत्यराज बलि की दी हुई पृथ्वी को नापने के लिये जब आपने अपना पग उठाया था और वह सत्यलोक में पहुँच गया था, तब यह ऐसा जान पड़ता था, मानो कोई बहुत बड़ा विजय ध्वज हो। ब्रह्मा जी के पखारने के बाद उससे गिरती हुई गंगाजी के जल की तीन धाराएँ ऐसी जान पड़ती थीं मानो उसमें लगी हुई तीन पताकाएँ फहरा रही हों। उसे देखकर असुरों की सेना भयभीत हो गयी थी और देवसेना निर्भय। आपका यह चरणकमल साधुस्वभाव पुरुषों के लिये आपके धाम वैकुण्ठ लोक की प्राप्ति का और दुष्टों के लिये अधो-गति का कारण है। भगवन्! आपका वही पादपद्म हम भजन करने वालों के सारे पाप-ताप धो दे -बहा दे।

नस्योतगाव इव यस्य वशे भवन्ति,

ब्रह्मादयस्तनुभृतो मिथुरर्द्यमानाः।

कालस्य ते प्रकृतिपूरुषयोः(फ्) परस्य,

शं(न्) नस्तनोतु चरणः(फ्) पुरुषोत्तमस्य॥ 8॥

नसि– नाक से होकर; ओत- नथे हुए; गावः– बैल; इव– मानो; यस्य– जिसका; वशे- वश में; भवन्ति- होते हैं; ब्रह्म- आदयः—ब्रह्मा तथा अन्य; तनु- भृतः- देहधारी जीव; मिथुः- परस्पर; अर्द्यमानाः- संघर्ष करते हुए; कालस्य - समय की शक्ति से; ते– तुम्हारा ; प्रकृति - पूरुषयोः- प्रकृति तथा जीव दोनों; परस्य– जो उनसे परे है; शम् – दिव्य भाग्य; नः- हमारे लिए; तनोतु— फैला सकें; चरणः- चरणकमल; पुरुष- उत्तमस्य - भगवान् के ।

ब्रह्मा आदि जितने भी शरीरधारी हैं, वे सत्त्व, रज, तम-इन तीनों गुणों के परस्पर-विरोधी त्रिविध भावों की टक्कर से जीते-मरते रहते हैं। वे सुख-दुःख के थपेड़ों से बाहर नहीं हैं और ठीक वैसे ही आपके वश में हैं, जैसे नाथे हुए बैल अपने स्वामी के वश में होते हैं। आप उनके लिये भी कालस्वरूप हैं। उनके जीवन का आदि, मध्य और अन्त आपके ही अधीन है। इतना ही नहीं, आप प्रकृति और पुरुष से भी परे स्वयं पुरुषोत्तम हैं। आपके चरणकमल हम-लोगों का कल्याण करें।

अस्यासि हेतुरुदयस्थितिसंयमाना-

मव्यक्तजीवमहतामपि कालमाहुः।

सोऽयं(न्) त्रिणाभिरखिलापचये प्रवृत्तः(ख्),

कालो गभीररय उत्तमपूरुषस्त्वम्॥ 9॥

अस्य—इस (ब्रह्माण्ड) का; असि— हो; हेतुः— कारण; उदय— सृष्टि; स्थिति– पालन; संयमानाम्- तथा संहार; अव्यक्त- अव्यक्त प्रकृति का; जीव– जीव; महताम्– तथा महत तत्त्व का; अपि- भी; कालम्— नियंत्रक काल; आहुः- कहलाते हो; सः-अयम्—यही व्यक्ति; त्रि-णाभिः- तीन नाभियों वाला; अखिल- हर वस्तु के; अपचये- ह्रास में; प्रवृत्तः- लगा हुआ; कालः–काल, समय; गभीर- अदृश्य, गम्भीर; रयः- जिसकी गति; उत्तम-पूरुषः- भगवान्; त्वम्– तुम ।

प्रभो! आप इस जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय के परम कारण हैं; क्योंकि शास्त्रों ने ऐसा कहा है कि आप प्रकृति, पुरुष और महत्तत्त्व के भी नियन्त्रण करने वाले काल हैं। शीत, गीष्म और वर्षाकाल रूप तीन नाभियों वाले संवत्सर के रूप में सबको क्षय की ओर ले जाने वाले काल आप ही हैं। आपकी गति अबाध और गम्भीर है। आप स्वयं पुरुषोत्तम हैं।

त्वत्तः(फ्) पुमान् समधिगम्य यया स्ववीर्यं(न्),

धत्ते महान्तमिव गर्भममोघवीर्यः।

सोऽयं(न्) तयानुगत आत्मन आण्डकोशं(म्),

हैमं(म्) ससर्ज बहिरावरणैरुपेतम्॥ 10॥

त्वत्तः– तुमसे; पुमान्-पुरुष- अवतार, महाविष्णु; समधिगम्य- प्राप्त करके; यया– जिससे; अस्य- इस सृष्टि का; वीर्यम्- बीज; धत्ते— स्थापित करता है; महान्तम्— महत तत्त्व; इव-गर्भम् – सामान्य भ्रूण(गर्भ)की तरह; अमोघ-वीर्यः- वह जिसका वीर्य नष्ट नहीं होता; सः अयम्- वही (महत तत्त्व); तया— प्रकृति के साथ; अनुगतः- मिला हुआ; आत्मनः- अपने से; आण्ड-कोशम्—ब्रह्माण्ड; हैमम्— सोने का; ससर्ज— उत्पन्न किया; बहिः- बाहर की ओर; आवरणैः– खोलों सहित; उपेतम्— प्रदत्त, समन्वित ।

आदि पुरुष अवतार महाविष्णु अपनी सृजन शक्ति आप से ही प्राप्त करते हैं । इस तरह अच्युत शक्ति से युक्त वे भौतिक प्रकृति में वीर्य स्थापित करके महत्तत्त्व उत्पन्न करते हैं । तब श्री भगवान की शक्ति से समन्वित यह महत्तत्त्व अपने में से ब्रह्मांड का सुनहरा अंडा उत्पन्न करता है , जो भौतिक तत्वों के कई आवरणों से ढका होता है।

तत्तस्थुषश्च जगतश्च भवानधीशो,

यन्माययोत्थगुणविक्रिययोपनीतान्।

अर्थां(ञ्)जुषन्नपि हृषीकपते न लिप्तो,

येऽन्ये स्वतः(फ्) परिहृतादपि बिभ्यति स्म॥ 11॥

तत्—इसलिए; तस्थूषः- प्रत्येक अचर वस्तु का; च– तथा; जगतः– चर; च– भी; भवान् - आप (हैं); अधीशः- चरम नियन्ता; मायया – प्रकृति द्वारा; उत्थ- उठा हुआ; गुण- (प्रकृति के) गुणों का; विक्रियया- विकार से (जीवों की इन्द्रियों के कर्म से); उपनीतान्— पास पास लाये गये; अर्थान्- इन्द्रिय-विषय; जुषन्– लिप्त

रहकर; अपि– यद्यपि; हृषीक-पते– हे इन्द्रियों के स्वामी; न लिप्तः- आपको छू नहीं पाते; ये– जो; अन्ये– अन्य; स्वतः— अपने बल पर; परिहृतात्—के कारण; अपि- भी; बिभ्यति— डरते हैं; स्म- निस्सन्देह ।.

इसलिये हृषीकेश! आप समस्त चराचर जगत् के अधीश्वर हैं।यही कारण है कि माया की गुण विषमता के कारण बनने वाले विभिन्न पदार्थों का उपभोग करते हुए भी आप उनमें लिप्त नहीं होते। यह केवल आपकी ही बात है। आपके अतिरिक्त दूसरे तो स्वयं उनका त्याग करके भी उन विषयों से डरते रहते हैं।

स्मायावलोकलवदर्शितभावहारि*-

भ्रूम*ण्डल*प्रहितसौरतमन्त्रशौण्डैः।

पत्न्य*स्तु षोडशसहस्रमनं(ङ्)गबाणैर्-

य*स्येन्द्रियं(वँ) विमथितुं(ङ्) करणैर्न विभ्व्यः॥ 12॥

स्माय– मुसकान; अवलोक- चितवन का; लव- अंश द्वारा; दर्शित – दिखलाया हुआ; भाव— उनके विचार; हारि- मोहक; भ्रू-मण्डल- भौंहों के अर्धवृत्र द्वारा; प्रहित- भेजा गया; सौरत- दाम्पत्य प्रेम का; मन्त्र- सन्देश; शौण्डैः– प्रगल्भ; पत्न्यः- पत्नियाँ; तु— लेकिन; षोडश-सहस्रम्- सोलह हजार; अनङ्ग— कामदेव के ;बाणैः- बाणों द्वारा; यस्य– जिसकी; इन्द्रियम्- इन्द्रियाँ; विमथितुम्— विक्षुब्ध करने के लिए; करणैः- अपनी सारी युक्तियों से; न विभ्व्यः- समर्थ नहीं थे।.

हे प्रभु ! आप 16000 अत्यंत सुंदर राजसी रानियों के साथ रह रहे हैं। अपनी अत्यंत लजीली और तिरछी चितवन तथा सुंदर धनुष रूपी भौहों से वे आपको उत्सुक प्रणय का संदेश भेजती हैं। किंतु वे आपके मन तथा इंद्रियों को विचलित करने में पूरी तरह असमर्थ रहती हैं।

विभ्व्य*स्तवामृतकथोदवहास्त्रिलोक्याः(फ्),

पादावनेजसरितः(श्) शमलानि ह*न्तुम्।

आनु*श्रवं(म्) श्रुतिभिरङ्घ्रिजम*ङ्गस*ङ्गैस्-

ती*र्थद्वयं(म्) शुचिषद*स्त उप*स्पृश*न्ति॥ 13॥

विभ्व्यः– समर्थ हैं; तव– तुम्हारी; अमृत– अमृतमयी; कथा– कथाओं का; उद-वहाः - जल धारण करने वाली नदियाँ; त्रि-लोक्याः– तीनों लोकों की; पाद-अवने- आपके चरणकमलों को स्नान कराने से; ज— उत्पन्न; सरितः– नदियाँ; शमलानि- सारा दूषण; हन्तुम्— नष्ट करने के लिए; आनुश्रवम्- प्रामाणिक व्यक्ति से श्रवण-विधि से युक्त; श्रुतिभिः- कानों से; अङ्घ्रि-जम्— आपके चरणकमलों से निकली (पवित्र नदी से युक्त); अङ्ग-सङ्गैः- सीधे शारीरिक सम्पर्क से; तीर्थ-द्वयम्- - ये दो प्रकार के तीर्थस्थान; शुचि-षदः- शुद्धि के लिए प्रयत्नशील; ते- तुम्हारे ; उपस्पृशन्ति– साथ रहने के लिए पास आते हैं ।

आपने त्रिलोकी की पाप-राशि को बहाने के लिये दो प्रकार की पवित्र नदियाँ बहा रखी हैं-एक तो आपकी अमृतमयी लीला से भरी कथा नदी और दूसरी आपके पाद-प्रक्षालन के जल से भरी गंगाजी। अतः सत्संग सेवी विवेकीजन कानों के द्वारा आपकी कथा-नदी में और शरीर के द्वारा गंगाजी में गोता लगाकर दोनों ही तीर्थों का सेवन करते हैं और अपने पाप-ताप मिटा देते हैं।